



E-ISSN: 2706-8927

P-ISSN: 2706-8919

www.allstudyjournal.com

IJAAS 2020; 2(3): 534-546

Received: 21-07-2020

Accepted: 19-08-2020

डॉ. विनोद चौधरी

(सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग), टी० एन० बी० कॉलेज, ति० मॉ० भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, भारत

वेदों में श्रम के प्रति सम्मान की समाजवादी दृष्टि

डॉ. विनोद चौधरी**सारांश:**

शोध सार-वैदिकवाङ्मय के ऋषियों का चिंतन जितना आध्यात्मिक है उतना ही आधिभौतिक भी। अर्थ और काम की आसक्ति मानव चेतना के व्यावहारिक विकास पथ को प्रशस्त करती है। इन दोनों की आधारशक्ति तप और श्रम की अटूट निष्ठा होती है। श्रम का सम्मान और श्रमिक एवं मालिक का भेद दूर कर उसे एक धरातल पर लाने की प्रक्रिया और सोच ही समाजवाद है। श्रम का महत्त्व जीवन के उत्कर्ष के लिए है। 'श्रम का सम्मान' मानव मात्र को सम्मान के धरातल पर खड़ा करने की दृष्टि है। श्रम के सम्मान की दृष्टि के लुप्त होने और किसी काम को छोटा और किसी काम को बड़ा समझकर विभेदक-रेखा उसे असम्मान की दृष्टि से देखे जाने से ही आज की जातिप्रथा, ऊँच नीच, छूत-अछूत के भीषण जहर को जन्म दिया जिसे दूर करने के लिए आज समूचा समाज आंदोलित है। श्रम के अंश का महत्त्व देकर विभाजन में उसकी हिस्सेदारी नहीं करने के कारण एवं श्रम से उत्पादन के अधिकांश अंश पर कब्जा करने के कारण ही पूंजीवाद का जन्म हुआ, श्रम का सूत्र आर्थिक विषमता से जुड़ा। कम से कम या श्रम नहीं करनेवालों ने पूंजीपति के रूप में अपने को सम्मानित कराने का प्रपंच रखा। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में श्रम का सम्मान था और श्रम के महत्त्व के रूप में व्यक्ति की प्रतिष्ठा थी। जो आर्थिक विषमताओं को नियंत्रित करने में सक्षम था। वैदिक ऋषियों के आर्थिक और श्रम सम्बन्धी दृष्टि को ही समाजवाद के तत्सम्बन्धी चिंतन का उद्गम स्रोत माना जा सकता है। वेद की ऋचाएँ/मन्त्र इसी सन्दर्भ में समाजवाद के सोच का पथ ज्योतिष करती है।

सूत्र शब्द – प्रपंच, श्रमशील, उद्यम, श्रम के मूल्य। विधि-विधायक पद्धति में लघु-शोध पत्र समन्वयात्मक एवं सुसंगठित है।

प्रस्तावना:

आमुख – ऋग्वेद में श्रम के प्रति सम्मान की दृष्टि (Dignity of labour) समाजवादी सोच के अनुरूप ही प्रतीत होता है। मार्क्सवाद भी उत्पादक परिश्रम की प्रतिष्ठा पर बल देता है। वैदिक ऋषियों ने भी प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा उत्पादक शारीरिक श्रम किये जाने की आवश्यकता पर बल दिया है। उत्पादन मनुष्य के द्वारा मनुष्य के लिए होना चाहिए। आज विश्व में अत्यधिक विषमता दुःख-कष्ट और पाप श्रम न करने की अभिलाषा के चलते ही विद्यमान है। जो व्यक्ति शारीरिक श्रम से दूर रहना चाहता है, उसे गुप्त या प्रकट रूप से चोरी करनी पड़ती है। इसी से शोषण की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। ईश्वर भी पुरुषार्थी मनुष्य पर कृपा करते हैं। पुरुषार्थ श्रम के बिना व्यक्ति अपने किये हुए पदार्थों की रक्षा में समर्थ नहीं हो सकता। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को श्रमशील होकर (ईश्वर के कृपा का भागी होना चाहिए)।^[1]

विषय वस्तु – जब मनुष्य पुरुषार्थी होके सबका उपकार करनेवाले और धार्मिक होते हैं, तभी वे पूर्ण ऐश्वर्य और ईश्वर की यथायोग्य रक्षा आदि को प्राप्त होने, सर्वत्र सत्कार के योग्य होते हैं।^[2] समाजवादी सोच में श्रम, संयम, सेवा, सदाचार ही मानवता के निर्माण में सहायक होते हैं। जहाँ तप करना सेवा करना दोषों का त्याग करना प्रिय लगता है। वहाँ मानवता है।^[3] देवता भी परिश्रम से थके बिना सहायता के लिए प्रस्तुत नहीं होते।^[4] यह झूठ नहीं है परमात्मा परिश्रमी की रक्षा करते हैं।^[5] देव उद्योगी पुरुष को चाहते हैं।^[6] पुनः वैदिक ऋषि का सन्देश है कि जो निरन्तर उद्यम करते हैं वे दारिद्र्य का नाश करते हैं। जो पुरुष (मनुष्य) जन्म के धर्म, अर्थ, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों फलों से विहीन हैं वे पुरुष लौहनिर्माता के धौकनी के समान केवल श्वास मात्र से जीवित प्रतीत होते हैं। वास्तव में वे पुरुष धर्म निर्मित दृति धौकनी के समान निर्जीव हैं।^[7] इसलिए पुरुष को चाहिए कि वह सदैव उद्योगी और कर्मयोगी बनकर अपने लक्ष्य के लिए कटिबद्ध रहे, अपुरुषार्थी होकर जीना केवल चर्ममात्र के समान प्राण यात्रा करना चाहते हैं, प्रस्तुत ऋचा में श्रम के महत्त्व का उद्घोष है।

परमात्मा उसे ही अपने आशीर्वाद से सम्पन्न करता है, जो स्वयं परश्रमी हो, वह धन अथवा ज्ञान प्राप्त कर दूसरों का उपकार करे। अतः 'विप्र' व 'दाशवान्' पद आये हैं। जो परिश्रम द्वारा प्राकृत जगत् से या विद्वानों से शिक्षा पाता है, वही विप्र मेधावी है। जिसने कुछ दिया है अथवा जो देता है उसी को दाशवान् कहा जाता है। वीरवती जिसमें वीरता(कर्मठता) नहीं, जगत् में उसका आना न आना समान है। अवीरजन अपनी जीविका भी उचित रूप के प्राप्त नहीं कर सकता है।^[8] ऋचा में समाजवादी सोच के अनुरूप श्रम के प्रति सम्मान का भाव अभिव्यक्त है। प्रत्येक व्यक्ति को उतना परिश्रम अवश्य करना चाहिए, जिसमें कि वह अपने घर तथा मित्रों को सुखी कर पाए। उद्योग न करनेवाला आलसी पुरुष ईश्वर के राज्य में दुःख पाता है। निर्बुद्धि परन्तु परिश्रमी पक्षी भी कितने प्रसन्न रहते हैं।^[9] प्रस्तुत ऋचा भी समाज में परिश्रम की प्रतिष्ठा का ही द्योतक है। जो व्यक्ति बुद्धिमान है, परिश्रमी की प्रतिष्ठा का ही द्योतक है। जो व्यक्ति बुद्धिमान है, परिश्रमी है, स्वाध्यायरत है, उन्हें ही मुधमय स्वादु अन्न मिलते हैं, जो व्यक्ति आलसी कुकर्मी व असंयमी है वे यदि महाराज व महाश्रेष्ठी भी हैं तो उन्हें अन्न मुधु व स्वादु न ही लगते क्योंकि क्षुधागिन

Corresponding Author:**डॉ. विनोद चौधरी**

(सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग), टी० एन० बी० कॉलेज, ति० मॉ० भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, भारत

अतिशय मन्द हो जाती है। उदराशय बिगड़ जाता है। पाचन शक्ति घट जाती है। अतएव उन्हें मधुमय पदार्थ अतिकटु लगने लगते हैं।^[10] ऋचा में समाजवादी चिंतन के सक्षरूप श्रम की गरिमा को उच्च स्थान दिया है। ज्ञान के साथ श्रम का भी मूल्य यजुर्वेद काल में खुब होता है। श्रम के मूल्य (Dignity of Labour) आए दिन पश्चिम की बात मानी जाती है, पर यजुर्वेद के कवि के शब्दों को लीजिए—तक्षकार, रथकार, बढई, निशाद तथा कुलाल सभी छोटे-बड़े कारीगरों का सत्कार समाज में हो। तक्षकार, रथकार, कुलाल सभी कर्मठ व्यक्तियों को नमस्कार है।^[11] कर्म ही जीवन का प्रधान गौरव है। कर्म से कोई बड़ा-छोटा नहीं होता है। जो कर्मठ है उसकी प्रतिष्ठा समाज में होती है। वैदिक कर्मकाण्ड का यही सच है। यजुर्वेद का प्रधान प्रतिपाद्य विषय कर्म ही है। यजुर्वेद के मंत्रों में भी श्रम एवं पुरुषार्थ की प्रेरणा वैदिक ऋषियों ने दी है। हे मनुष्यों! जैसे वरुण उत्तम पुरुष, सविता ऐश्वर्यात्पादक अच्छे प्रकार रक्षा करनेवाला सभा का अध्यक्ष ऐश्वर्य के साथ वर्तमान राज्य और मन आदि राज्यलक्ष्मी यज्ञ को प्राप्त होता है, वैसे ही कीर्ति के साथ बल को धारण करते हुए प्राप्त होओ। अर्थात् ऐश्वर्य के बिना और राज्य के बिना राज्यलक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी के बिना भोग प्राप्त नहीं होते इसलिए नित्य पुरुषार्थ करना चाहिए।^[12]

यजुर्वेद के 40 वें अध्याय में कहा गया :-
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।^[13] अर्थात् कर्तव्य कर्मों को करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करो इसी में कल्याण है। यही कर्म बंधन से बचने का उपाय है। मंत्र में श्रम की प्रतिष्ठा कर्म का उपदेश और विचार को आचार में उतारने का उपदेश है। ज्ञान कर्म के बिना निष्फल है और कर्म ज्ञान के बिना व्यर्थ है। इनदोनों के समुच्चय से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। गीता में भी कहा गया है - फल की आशा छोड़कर कर्तव्य कर्म अवश्य करना चाहिए। किन्तु न तो कर्म फल की आसक्ति में फसे और न कर्म ही छोड़े।^[14] दूसरी ओर वनपर्व में द्रोपदी युधिष्ठिर से कहती है—कर्म के बिना प्राणिमात्र का निर्वाह नहीं।^[15] कर्म और ज्ञान का समन्वय सारी भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। इसे हम यजुर्वेद में भी पाते हैं। एक ओर यदि सोममेध, पुरुषमेध, अश्वमेध, दर्शपोर्णमास आदि कर्मयागो का प्रकरण हम पाते हैं तो दूसरी ओर शिवसंकल्प, ईशावाच्य आदि औपनिषदिक ज्ञान की सरिता भी वही प्रवाहित दृष्टिगोचर होती है।

सामवेद में श्रम के सम्मान की, महत्ता प्रतिपादित है।
श्रायन्त इव सूर्य विश्वेन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जातो जनि मान्योजसा प्रतिभागं न दीधिम।^[16]

(सूर्यमइव) सूर्य के समान (श्रायन्तः— To Sweat Perspire) अत्यन्त काम के कारण पसीने से तरबतर होते हुए (विश्वाइत्) सभी मिलजुलकर (इन्द्रस्य) उस अन्नों का (भक्षत) सेवन करो। 'श्रायन्त इव सूर्यम्' इस उपमा में यह स्पष्ट है कि सबको अपनी शक्ति के अनुसार काम करना है। बिना श्रम के किसी को खाने का अधिकार नहीं है। समाजवाद का मौलिक चिन्तन यही है जो जितना श्रम करता है, वह उतना कार्य श्रम करें ही। उस श्रम से उत्पन्न धनों का आवश्यकतानुसार (वसूनि) धनों को (प्रतिभागं न) आवश्यकतानुसार ही (भज—से वायाम्) जितना सेवनीय हो (दीधिम) धारण करें। कार्य शक्ति के अनुसार धन का विभाग आवश्यकतानुसार हो।

श्रम के सम्मान की साम्यवादी विचारधारा के बीज रूप का दर्शन सामवेद के मंत्रों में द्रष्टव्य है। जो व्यक्ति शक्ति रहते कार्य (श्रम) न करें, उसे अन्न न मिलना चाहिए। बिना श्रम किये किसी को खाने का अधिकार नहीं है।

न सीमदेव आप तदिष दीर्घायो मर्यः।
एतग्वाचिद्य एतशो युयोजत इन्द्र हरी युयोजते।।^[17]

ऋषि कहते हैं कि (दीर्घायो) ऐ दीर्घ जीवनवाले (अदेवः मर्यः) व मनुष्य जो (दिवः गति) गतिशील नहीं होना चाहता अर्थात् जो क्रियाशीलता को छोड़कर आराम तलवी से चलता है यह (सीम) निश्चय से (तदईषम) उस अन्न को

जो कि श्रम से पैदा किया जाता है (न आप) न प्राप्त करें। दीर्घायों सम्बोधन से यह सुव्यक्त होता है कि यदि घर में यह नियम न बनेगा और युवक निठल्ले व आराम पसन्द हो जायेंगे तो वह घर देर तक नहीं चलेगा। यही बात समाज व राष्ट्र में लागू होती है। समाज के दीर्घजीवन के लिए सबको कुछ (श्रम) करना है। अकर्मण्य लोग राष्ट्र की अवनति का कारण बनते हैं। इसीलिए यह नियम होना चाहिए कि (एतग्वाचित्) वह ही इस अन्न को प्राप्त करने वाले हों जो कि शरीररूपी रथ में जुते इन चित्रित इन्द्रिय रूप घोड़ों को (युयोजते) निरन्तर किया (श्रम) में जोड़े रखता है। अर्थात् जो सदा क्रियाशील हो उसे ही अन्न पाने का अधिकारी समझा जाय और वस्तुतः (इन्द्रः) जो इन्द्रियों का अधिष्ठाता है, जो उनका गुलाम नहीं वह (हरी) ज्ञानन्द्रियों व कर्मन्द्रियों रूप दोनों ही घोड़ों को कर्म व्यापृत रखता है। इन शब्दों में इन्द्रियों को कार्य व्यापृत रखने का वैयक्तिक लाभ भी इस रूप में संकेतित हुआ है कि तुम इन्द्रियों के अधिष्ठाता बने रहोगे, इन्द्रियों के दास न बन जाओगे।

अथर्ववेद में श्रम की महत्ता (प्रतिष्ठा) प्रतिपादित है। श्रमशील मनुष्य ही उत्कर्ष, ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाला होता है।
कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित।।^[18]

कर्म मेरे दाहिने हाथ में और जीत मेरे बाये हाथ में स्थित है। मैं भूमि जीतनेवाला, घोड़े जीतनेवाला, धन जीतनेवाला और सुवर्ण जीतनेवाला रहूँ। प्रस्तुत मंत्र में श्रम के प्रति सम्मान का भाव द्योतित है। समाजवादी सोच के अनुरूप श्रम का मूल्यांकन श्रमजानात्मक शक्ति के रूप में हुआ है। अथक परिश्रम (कर्म) से मनुष्य अपने भाग्य (ऐश्वर्य) का निर्माता हो सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया -^[19] श्रमशील (सक्रिय व्यक्ति को मधु की प्राप्ति होती है और सदा गतिशील रहने वाला व्यक्ति (कर्मरत) स्वादिष्ट उदुम्बर आदि फल प्राप्त कर लेता है। अविश्रान्त रूप से अहर्निश गतिमान रहने के कारण ही सूर्य विश्ववन्द्य है। अतः जीवन में दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ो।

समाजवादी विचारक देश की विशाल श्रम शक्ति के समुचित उत्पादक उपयोग में ही आर्थिक विकास का एकमात्र उपयुक्त माध्यम मानते हैं। आर्थिक विकास का वही कार्यक्रम सफल हो सकता है जो समस्या का सीधे सामना करे इसे हल करे। भूख मिटाने के लिए भोजन और प्यास मिटाने के लिए पानी चाहिए। इसके लिए मानव मात्र का स्वधर्म कर्तव्य पालन एवं कर्म में निहित है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है -

अन्नं बहु कुर्वीत् तद् व्रतम्^[20]। वैदिक उपकालीन आर्थिक मूलाधारों में पशुपालन और कृषि वृत्तियों से सम्बन्धित वस्तुत्पादन एवं सस्योत्पादन रहे हैं। विराज, श्री पूर्ण कलश और भूमिश्रृंग आदि इसके प्रतीक थे। ऋग्वेद में विराज को अधिपुरुष और सम्पूर्ण विश्व का उत्पादक माना गया है।^[21] विराट् शब्द का प्रयोग राजत्व प्रदान करनेवाली अलौकिक शक्ति के अर्थ में किया गया है। अथर्ववेद^[22] विराज को प्रथम उत्पादक मिथुन कहा गया है। पुनः विराज की अलौकिक शक्ति की परिकल्पना अन्नवाली गाय के रूप में की गई है। विवस्वान् के पुत्र मनु को विराज का बछड़ा, पृथिवी को पात्र तथा वेन के पुत्र पृथु को दोहक कहा गया है। इस प्रकार दोहन से कृषि और धान्य की उत्पत्ति हुई। इसी कारण मनुष्य कृषि और धान पर ही जीवित रहते हैं।^[23] गोपथ ब्राह्मण में 'विराज' को श्री अन्न कहा गया है—अन्नम् वै श्रीविराट्^[24] शपथब्राह्मण^[25] में वृष्टि को 'श्री' कहा गया—श्रियों वै पर्जन्यो वर्षीत पारस्कर गृहसुत्र^[26] में सीतायज्ञ के प्रसंग में सम्पत्ति, भूति, भूमि, वृष्टि, ज्यैष्ठ्यम्, श्रैष्ठ्यम् और प्रजा के साथ ही श्री की प्रार्थना की गई है। श्रमिक कृषक के श्रमोत्साह का संवर्द्धन करते हुए ऋग्वेद के ऋषि ने हल जोतने और जुओं का विस्तार करने की सलाह दी।^[27] 'युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वम्' बुद्धिमान हल जोतते हैं और जुओं का विस्तार करते हैं।^[28] सीरा युंजन्ति कवयों युगा वितन्वते।' श्रम के साथ भौतिक विभव की तपः शक्ति से मिलाकर वैदिक ऋषि ने सांस्कृतिक दृष्टि की पूर्णता का परिचय दिया है। अन्न के (भोगो) के समवितरण की समाजवादी आर्थिक दृष्टि न्यायवाला कि जो पैदा हो उसे बराबर नहीं तो जितना हो सके उतना बराबरी से बाँटें उपनिषद् कालीन ग्रंथों में पाते हैं -

‘कस्मात्पुनः पाप्मनो न व्यावर्तते। मिश्रं ह्येतद्वर्षेषां हि स्वं तद प्रविभक्तं यत्प्राणिभिर्भुज्यते। सर्वभोज्यत्वादेव यो मुखे प्रक्षिप्यमाणोऽपि ग्रासः परस्य पीडाकरोदृश्यते, ममेदं स्यात् इति सर्वेषां तप्ताशा प्रतिबद्धा। तस्मान् परमपीडयित्वा ग्रसितुमपि शक्यते। दुष्कृतं हि मनुष्याणाम् इत्यादि स्मरणाच्च।^[29] अर्थात् वह पाप से मुक्त क्यों नहीं होता ? क्योंकि जो प्राणियों द्वारा बिना बाँटे खाया जाता है। वह अन्नमिश्र सबका स्वधन है। सबका भोज्य होने के कारण ही उस अन्न का मुख में दिया जानेवाला ग्रास भी दूसरे को पीडा देनेवाला देखा जाता है, क्योंकि उसपर यह मेरा हो, इस प्रकार की आशा बंधी रहती है। अतः दूसरे को कष्ट दिये बिना खाया नहीं जा सकता है। समाजवादी विचारक डा० राम मनोहर लोहिया ने कहा था—दुनियाँ में छोटे-बड़े का फर्क जनम के हिसाब से नहीं पैसे, वगैरह से होता है। यहाँ जात-पात का फर्क रूपैये ओहदा, पढाई से नहीं जनम के मान से है।³⁰ अतः कर्म की प्रतिष्ठा और जाति उन्मूलन के बिना समाजवाद की कल्पना संभव नहीं है, वह ब्राह्मण संस्कृति, ब्राह्मण सामान्तवाद और पूंजीवाद की आधार भूमि है। जाति की गहरी पकड़ ने कर्म के प्रति अनास्था पैदा की, इससे देश का इतिहास ही जकड़ कर रह गया।^[31]

निष्कर्ष—वर्तमान में भी कर्म (श्रम) को प्रतिष्ठा दिलाए बिना यहाँ की अर्थव्यवस्था में सम्यक् सुधार एवं विकास संभव नहीं है। वैदिक चिंतन में भी कर्म के विपरीत आचरण को हेय माना गया था। जो ब्राह्मण ब्रह्मवेद ज्ञानी) वेद न जाननेवाला कुमार्गी, अशुद्ध व्यवहार वाला और अविख्यात है, वह मणियों (रत्नों को न रखेला वाला तेजहीन होवे।^[32] वैदिक समाजवादी चिंतन में संग्रह पाप है। संचय चोरी है। चोरी हमेशा संग्रह की कोख में पैदा होती है। जबतक संचय और संग्रह रहेगा तबतक चोरी, भीख (दारिद्र्य) भी रहेगा। ऋग्वेद की ऋचाओं में कंजूस के धनों को वितरित करने की बातें भी आई हैं।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।^[33]

अनुदार चित्त वाला व्यक्ति अन्न-धन को व्यर्थ पाता है, उसका धन निरर्थक है। उसकी यह मृत्यु है। वह न नियामक ईश्वर को तृप्त करता है, न ही यज्ञ उपासना द्वारा, न ही दान द्वारा मित्र को पुष्ट करता है। केवल अपने भोगों की पूर्ति करनेवाला केवल पापरूप होता है। अन्यत्र कहा गया—जो दुष्ट मनुष्य अपनी पेट के लिए बिना श्रम किये दूसरे को सताता है, हे प्रभो ! तू उसके पेट का नाश करता हुआ अंत में उसका नाश करता है।^[34] निश्चय ही वेद में श्रम के सम्मान की समाजवादी दृष्टि विद्यमान है। ऋग्वेद का उदघोष है — ‘अतप्त तनूर्न तदामो अश्नुते।^[35] जो तप(श्रम) नहीं करता वह सुख नहीं पाता।

सन्दर्भ—संकेत

1. ऋग्वेद—1.4.7
एमा शुमाशवे भर यज्ञश्रियं पतयन्मदयत्सर्वम्॥
2. ऋग्वेद—1.8.9
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे॥
3. ऋग्वेद 4.33.11
न ऋते श्रान्तस्य सखाय।
4. ऋग्वेद 1.179.3
न मृषा श्रान्तं यदवान्त देवाः ।
5. ऋग्वेद 6.16.34 अग्नि वित्राणि जङ्घनद द्रविगस्सु विपन्थया समिद्धः
शुक्र आहुतः॥
6. ऋग्वेद 8.2.18
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं स्वनाय स्पृहयति। यान्ति प्रमादमतन्द्राः॥
7. ऋग्वेद 7.89.2
यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः मूल सुक्षत्र मूलयः॥
8. ऋग्वेद 8.43.15
स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्त्रिणम्। अग्ने वीरवती मिषम् ।
9. ऋग्वेद 8.45.36
म सख्यु शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवासो।
आवृत्वद्भुते ते मनः ।
10. ऋग्वेद — 8.48.1

- स्वादोर भक्षि वयसः सुमेधा स्वाध्वो वरिवोवित्तस्य ।
विश्वं य देवा उत मर्त्या सो मधु ब्रुवन्तो अभि संचरन्ति॥
11. यजुर्वेद 16.27 नमस्तक्ष्म्यो रथकारेभ्यश्च वो नमः कुलालेभ्यः कर्मारिभ्यश्च
वो नमो नमो निषादेभ्यः
पुंजिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः।
 12. यजुर्वेद (20.72)
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भजेन सविता श्रियम्।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत॥
 13. यजुर्वेद (40.2) (ईशावास्योपनिषद् (2)
 14. गीता 2.47
 15. महाभारत वनपर्व 32.8
बालगंगाधर तिलके गीतारहस्य पृ० 320 में उद्धृत।
 16. सामवेद—3.267.5
 17. सामवेद—3.268.6
 18. अथर्ववेद—7.50.8
 19. ऐतरेय ब्राह्मण—7.3.3.21
चरन वै मधु विन्दन्ति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं न तन्द्रयते चरश्चरेवेति॥
 20. तैत्तिरीयोपनिषद्—(भृगुवल्ली 3, अनुवाक् 9)
 21. ऋग्वेद 10.159.6 तथा 10.174.5
 22. अथर्ववेद (8.9.10)
 23. अथर्ववेद (8.10.24)
 24. गोपथब्राह्मण (2.1.9)
 25. शतपथब्राह्मण (12.4.1.11)
 26. पारस्करगृह्यसूत्र (2.17.9)
सम्पत्तिभूतिमिवृष्टिज्येष्ठ्यं श्रेष्ठ्यं श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहाः।
 27. यजुर्वेद (12.67)
 28. यजुर्वेद (12.68)
 29. बृहदारण्यक उपनिषद् (1.5)
 30. ओंकारशरद भारतमाता—धरतीमाता पृ० 216
 31. डा० राजेन्द्र भटनागर—डा० लोहिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व। (पृ० 6)
 32. अथर्ववेद 20.128.6
 33. ऋग्वेद— 10.117.6
 34. अथर्ववेद (4.16.7)
 35. ऋग्वेद (9.83.1)